डी–कोडिंग ©
वर्ण व्यवस्था

De-coding Varna Vyavastha

Author:
Ambuj Kumar Mishra
Genius Coaching Institute, Katihar

डी–कोडिंग वर्ण व्यवस्था

De-coding Varna Vyavastha

– लेखकः अम्बुज कुमार मिश्र
जीनियस कोचिंग इंस्टिट्यूट, कटिहार।

किरोड़ी मल कॉलेज, दिल्ली को समर्पित
(जहाँ शिक्षा ग्रहण करते समय मैंने स्वतंत्र दृष्टि से सोचना सीखा)

website: www.decodingvarnavyavastha.in
email: ambujkumarmishra2020@gamail.com

© कापीराईट सुरक्षित

ISBN No.: 978-81-931075-2-2

वर्ण व्यवस्था :

वर्ण का संबंध बारह राशियों से है। इन बारह राशियों का जैसा स्वरूप होता है इन राशियों में उत्पन्न पुरूष तथा स्त्रियों का स्वभाव भी प्रायः वैसा ही होता है।

बारह राशियाँ तथा उनसे संबंधित वर्ण इस प्रकार है :-

वर्ण	राशि
ब्राह्मण वर्ण	1) कर्क
	2) बृश्चिक
	3) मीन
क्षत्रिय वर्ण	1) मेष
	2) सिंह
	3) धनु
वैश्य वर्ण	1) वृष
	2) कन्या
	3) मकर
शूद्र वर्ण	1) मिथुन
	2) तुला
	3) कुंभ

किसी भी व्यक्ति के वर्ण को उसके जन्म के समय, जन्म का स्थान तथा जन्म की तिथि के आधार पर ज्ञात किया जाता है।

- वर्ण वंशानुगत नहीं होता है।
- वर्ण का जाति से कोई सम्बंध नहीं है।

वर्णव्यवस्था

ऋग्वेद के दशम् मंडल अष्टक (8) के अध्याय-4 में देवता पुरूष का वर्णन किया गया है (1-14)

इसके अनुसार सभी प्राणियों की समष्टि ब्रह्मांड रूप देहवाला पुरूष हजारों अर्थात अनंत शिरों वाला है।

इसी प्रकार इसके हजारों अर्थात अनंत नेत्र है, हजारों अर्थात अनंत पैर है। यह पुरूष इस ब्रह्मांड को सब ओर से घेरकर दश अंगुल परिमित स्थान को ही घेरे हुए स्थित है। अर्थात ब्रह्मांड के बाहर भी सर्वत्र व्यापक होने के कारण ब्रह्मांड का आकार इसके लिए नगण्य है।

ऋग्वेद में वर्तमान जगत, अतीत का जगत तथा आने वाले समय में उत्पन्न सभी प्राणियों आदि सभी कुछ को पुरूष ही माना गया है।

यह पुरूष संसार के स्पर्श से रहित ब्रह्म पुरूष है। यह अज्ञान के कार्य इस संसार से बाहर इसके गुण-दोषों से अस्पृष्ट रह कर उत्कर्ष के साथ स्थित हुआ।

संसार के अस्तित्व में आने तथा संहार के विषय में ऋग्वेद में इस प्रकार वर्णन किया गया है कि 'ब्रह्मस्वरूप इस पुरूष का जो लेश मात्र है वह यह अंश माया रूप इस ब्रह्मांड के रूप में सृष्टि संहार की परंपरा के रूप में पुनः-पुनः अस्तित्व में आता है।'

इसे ही भगवत गीता में (10.42) में लिखा गया है कि यह जगत परब्रह्म का लेश मात्र है।

ऋग्वेद के अनुसार उस परब्रह्म से इस ब्रह्मांड रूपी देह को धारण करनेवाला विराट पुरूष उत्पन्न हुआ। उस विराट देह के उपर उस देह को ही आधार बनाकर उस देह का अभिमानी पुरूष उत्पन्न हुआ। इस उत्पन्न हुए विराट पुरूष से अतिरिक्त देवता, पक्षी, मनुष्य आदि जीवों के रूप में अस्तित्व में आया।

जब देवताओं ने विराट पुरूष को संकल्प से उत्पन्न किया -

कितने प्रकार से विविध रूपों में इसे कल्पित किया, इस पुरूष का मुख क्या था?

इसकी भुजाएँ कौन बने, इसकी जंघाएं कौन सी है तथा इसके पैर कौन से कहे जाते है?

इस पुरूष का मुख ब्राह्मण अर्थात ब्रह्मविद् था, इस पुरूष की भुजाएँ राजन्य अर्थात क्षत्रिय अर्थात रक्षा करने में समर्थ शूर पुरूष को बनाया गया जो वैश्य है वह इस विराट पुरूष की जंघाएं हैं। इस विराट पुरूष के पैरों से शूद्र उत्पन्न हुआ।

पुनः वर्णित है:-

उस यज्ञ पुरूष के मन से चंद्रमा उत्पन्न हुआ, उसके चक्षु अर्थात आँख से सूर्य उत्पन्न हुआ, उसके मुख से इन्द्र तथा अग्नि एवं उसके प्राण से वायु उत्पन्न हुआ।

उस विराट यज्ञपुरूष की नाभि से अंतरिक्ष उत्पन्न हुआ। उसके शिर से द्युलोक, पैरो से भूमि, श्रोत से दिशाएं उत्पन्न हुई।

- ऋग्वेद (भुवनवाणी ट्रस्ट, लखनऊ)

यजुर्वेद में भी परमपुरूष संबंधी यही संकल्पना प्रस्तुत की गई है।

छान्दोग्य उपनिषद (1-3) के अष्टम प्रपाठक में लिखा है कि :-

यह जो ब्रह्मपुर है (अर्थात ब्रह्म का शरीर है) इसमें एक छोटा सा (हृदय) कमल का मंदिर है। इस मंदिर के अंदर एक छोटा सा आकाश (ब्रह्म) है अब उस (छोटे आकाश) के अंदर जो कुछ है उसका अन्वेषण करना चाहिए। उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए

जितना बड़ा यह (बाहर का) आकाश है उतना बड़ा यह हृदय के अंदर (का) आकाश है। दोनो इसमें अंदरही द्यौ तथा पृथ्वी समाए हुए हैं। अग्नि तथा वायु दोनों, सूर्य तथा चंद्र दोनों, बिजलियाँ तथा नक्षत्र तथा जो कुछ इस (आत्मा) का इस लोक में है और जो नहीं हैं (अर्थात जो कुछ हो चुका है वह होगा) वह सब इसके समाया हुआ है।

भगवत गीता अध्याय तीन में (गीता प्रेस) लिखा है कि :-

संपूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणो द्वारा किये जाते है परन्तु अहंकार से मोहित अंत:करणवाला अज्ञानी मनुष्य मैं कर्ता हूँ ऐसा मान लेता है।

प्रकृति के गुण तीन हैं:- सत, रज तथा तम

गुण विभाग तथा कर्म विभाग को तत्व से जानने वाला महापुरूष संपूर्ण गुण (ही) गुणों में बरत रहे है। ऐसा मानकर उनमें आसक्त नहीं होता।

भगवत गीता में पुन: लिखा है कि -

संपूर्ण प्राणी प्रकृति को प्राप्त होते है। ज्ञानी महापुरूष भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है (फिर इसमें किसी का) हठ, क्या करेगा?

भगवत गीता के अध्याय चार में लिखा है कि

मेरे द्वारा गुणों तथा कर्मो के विभाग पूर्वक चारों वर्णो की रचना की गई। उस (सृष्टि-रचना आदि) का कर्ता होने पर भी मुझे अविनाशी परमेश्वर को रत् अकर्ता जान।

यहाँ चारो वर्णो का अर्थ - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र है।

पुन: भगवत गीता के अध्याय सात में वर्णित है कि जितने भी सात्विक भाव हैं तथा जितने भी राजस तथा तमस भाव हैं वे सब मुझसे (मत:) ही होते है।

ऐसा उनको समझो परन्तु मैं उनमें तथा वे मुझमें नहीं है।

भगवान कृष्ण पुनः अर्जुन से कहते है कि प्रकृति तथा पुरूष दोनों को ही अनादि समझो तथा विकारों को तथा गुणों को भी प्रकृति से उत्पन्न समझो

सत्व गुण, रजो गुण तथा तमो गुण - ये प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर से बांधते है।

इन गुणो में सत्व गुण निर्मल होने के कारण प्रकाश करने वाला तथा निर्विकार अर्थात विकार रहित है।

सतगुण, सुख तथा ज्ञान की आसक्ति से बांधता है, रजो गुण तृष्णा तथा आसक्ति से बांधता है तथा संपूर्ण देहधारियों को मोहित करने वाला तमोगुण अज्ञान को उत्पन्न करता है।

तमोगुण प्रमाद, आलस्य तथा निद्रा के साथ बांधता है।

सत्व गुण सुख में तथा रजोगुण कर्म में लगाकर विजय करता है परन्तु तमो गुण ज्ञान को ढककर तथा प्रमाद में लगा कर विजय करता है।

रजो गुण तथा तमोगुण को दबाकर सत्व गुण बढ़ता है, सत्वगुण तथा तमो गुण को दबाकर रजो गुण बढ़ता है। वैसे ही सत्वगुण तथा रजोगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है।

भगवत गीता के अध्याय अठारह में वर्णित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रो को कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए तीनो गुणों के द्वारा विभक्त किया गया है।

मन को निग्रह करना, इंद्रियों को वश में करना, धर्म पालन के लिए कष्ट सहना, बाहर भीतर से शुद्ध रहना, दूसरों के अपराध को क्षमा करना, शरीर, मन आदि में सरलता रखना। वेद, शास्त्र आदि का ज्ञान होना (ज्ञानम), यज्ञ विधि को अनुभव में लाना (विज्ञानम) (आर्जवम, ज्ञानम, विज्ञानम) तथा परमात्मा, वेद आदि में आस्तिक भाव रखना ये सब के सब ही ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं।

शूरवीरता, तेज, धैर्य, प्रजा के संचालन आदि की विशेष चतुरता तथा युद्ध में कभी पीठ न दिखाना, दान करना तथा शासन करने का भाव ये क्षत्रिय को स्वाभाविक कर्म है।

खेती करना, गायों की रक्षा करना तथा व्यापार करना वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं तथा परिचर्यात्मकम् अर्थात सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

(यहाँ शूद्र का काम ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना नहीं कहा गया है, जैसा कि अनेक लेखक लिखते हैं)

''परिचर्यात्मंक कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्''

(श्लोक - 44, अध्याय - 18)

श्रीमद्भागवत महापुराण में भगवान की योगमाया के आधार पर स्थित ज्येतिश्चक्र का शिशुमार (सूंस) के रूप में वर्णन किया है।

इस वर्णन के अनुसार यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है तथा इसका मुख नीचे की ओर है इसकी पूंछ के सिरे पर ध्रुव स्थित है।

पूंछ के मध्यभाग में प्रजापति, अग्नि, इंद्र तथा धर्म हैं। पूंछ की जड़ में धाता तथा विधाता है। इसके कटि प्रदेश में सप्तर्षि है।

यह शिशुभार दाहिनी ओर को सिकुड़कर कुंडली मारे हुए है। ऐसी स्थिति में अभिजित से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त जो उत्तरायण के चौदह नक्षत्र हैं वे इसके दाहिने भाग में हैं तथा पुष्य से लेकर उत्तराषाढ़ा पर्यन्त जो दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र है वे बायें भाग में है। लोक में भी यह शिशुमार कुण्डलाकार हेता है तथा उसके दोनों ओर के अंगों की संख्या समान रहती है। उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र संख्या में भी समानता है। इसकी पीठ में अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़ा तथा उत्तराषाढ़ा नाम के तीन नक्षत्रों का समूह है) तथा उदर में आकाश गंगा है। इसके दाहिने तथा बाँये

कटितटो में पनर्वसु तथा पुष्य नक्षत्र है। पीछे के दाहिने तथा बाये चरणों में आर्द्रा तथा अश्लेषा नक्षत्र है तथा दाहिने तथा बायें नथुनो में क्रमशः अभिजित् तथा उत्तराषाढ़ा है।

इसी प्रकार दाहिने तथा बाँये नेत्रों में श्रवण तथा पूर्वाषाढा तथा दाहिने तथा बायें कानो में धनिष्ठा तथा मूल नक्षत्र है। मधा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र बायीं पसलियों में तथा बिपरीत क्रम में मृगशिरा आदि उत्तरायण के आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियों में है। शतभिषा तथा ज्येष्ठा ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने तथा बाये कंधो की जगह है। इसकी ऊपर की थूथनी में अगस्त्य, नीचे की ठोड़ी में नक्षत्ररूप यम, मुख में मंगल, लिंगप्रदेश में शनि, कुकुद में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चंद्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनी कुमार, प्राण तथा अपान् में बुध, गले में राहु, समस्त अंगों में केतु तथा रोमों में तारागण स्थित है।

श्रीमद् भागवत महापुराण में भगवान विष्णु का यही सर्व देवमय स्वरूप बताया गया है।

पुनः बराहमिहिर के वृहत जातक में लिखा है - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णो की उत्पत्ति भी ग्रहों के संबंध से होती है

जिन व्यक्तिओं का जन्म कालपुरूष के उत्तमांग, अमृतमय रश्मियों के प्रभाव से होता है वे पूर्ण बुद्धि, सत्यवादी, अप्रमादी, स्वाध्यायशील, जितेन्द्रीय, मनस्वी तथा सच्चरित्र होते है अतः ब्राह्मण।

जिनका जन्म कालपुरूष के मध्यमांग रजोगुणाधिक्य मिश्रित रश्मियों के प्रभाव से होता है; वे मध्यबुद्धि, तेजस्वी, शूरवीर, प्रतापी, निर्भय, स्वाध्यायशील, साधु, अनुग्राहक तथा दुष्ट नग्राहक होते है अतएव क्षत्रिय।

जिनका अंग उदासीन अंग, गुणात्रय की अल्पता वाली ग्रह रश्मियों के प्रभाव से होता है वे उदासीन बुद्धि, व्यवसाय कुशल,

पुरूषार्थी, स्वाध्यायरत तथा संपत्तिशील होते है अतएव वैश्य।

तथा जिनका अधमांग, तमोगुणाधिक्य रश्मिवाले ग्रहो के प्रभाव से होता है वे विवेक शून्य, दुर्बुद्धि, व्यसनी, सेवावृत्ति तथा हीनाचरण वाले होते है अतएव शूद्र बताए गए है।

शिशु (नर या मादा) के जन्मकाल में पुरूषाकार काल चक्र बनाकर उसके शिर में मेष, मुख में वृष, छाती में मिथुन, हृदय में कर्क, पेट में सिंह, करिहांव में कन्या, नाभि के नीचे तुला, लिंग में वृश्चिक, पैरो की संधि में धनु, पैरो की अंगुलियों में मकर, फीलियों में कुंभ तथा पैरों में मीन इस रीति से सब अंगों में सब राशियों का न्याय करके उन्हें कालांग बने।

प्रयोजन यह है कि जिस राशि में शुभ अथवा अशुभ स्थित हो, वह राशि कालचक्र में जिस अंग पर स्थित हो उस अंग को पुष्ट अथवा क्षीण करता है।

बृहतहोरा शास्त्रम् तथा अन्य के अनुसार :- बारह राशियाँ तथा उनसे संबंधित वर्ण इस प्रकार है

राशि		वर्ण
1) मेष	-	क्षत्रिय
2) वृष	-	वैश्य
3) मिथुन	-	शूद्र
4) कर्क	-	ब्राह्मण
5) सिंह	-	क्षत्रिय
6) कन्या	-	वैश्य
7) तुला	-	शूद्र
8) वृश्चिक	-	ब्राह्मण
9) धनु	-	क्षत्रिय

10) मकर – वैश्य

11) कुंभ – शूद्र

12) मीन – विप्र या ब्राह्मण

इन बारह राशियों का जैसा स्वरूप होता है; इन राशियों में उत्पन्न पुरूष तथा स्त्रियों का स्वभाव भी प्रायः वैसा ही होता है।

संक्षेप में इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

वर्ण		राशि
ब्राह्मण वर्ण	–	1) कर्क
		2) वृश्चिक
		3) मीन
क्षत्रिय वर्ण	–	1) मेष
		2) सिंह
		3) धनु
वैश्य वर्ण	–	1) वृष
		2) कन्या
		3) मकर
शूद्र वर्ण	–	1) मिथुन
		2) तुला
		3) कुंभ

किसी भी व्यक्ति के वर्ण को उसके जन्म का समय, जन्म का स्थान तथा जन्म की तिथि के आधार पर ज्ञात किया जाता है।

वर्ण वंशानुगत नहीं होता है।

किसी भी सिंद्धांत या नियम का आधार उसका परीक्षण की कसौटी पर खरा उतरना होता है। जैसा की विज्ञान में संरक्षण के नियम के

संबंध में माना जाता है। वर्ण व्यवस्था संबंधी सिद्धांत के परीक्षण का भी यही आधार होना चाहिए।

बराहमिहिर के वृहद् जातक के अनुसार ''स्वच्छ शहद के से पीले नेत्र तथा थोड़े वालों वाला सूर्य है।'' यदि कोई ऐसा व्यक्ति जिसका सूर्य उच्च का हो तो उसमें ऐसी विशेषता का परीक्षण करना चाहिए।

हमारा आग्रह यह नही है कि लोग वर्ण व्यवस्था को माने या नहीं माने बल्कि यहाँ मुख्य उद्वेश्य केवल यह स्पष्ट करना है कि वर्ण व्यवस्था की अवधाारणा क्या है तथा यह जाति व्यवस्था बिल्कुल नही है।

जाति व्यवस्था

जाति व्यवस्था मूलतः व्यवसाय आधारित व्यवस्था है। गुप्त काल तक श्रेणी व्यवस्था अपनी उन्नत अवस्था में थी। श्रेणी के नियम राज्य द्वारा मान्य थे।

श्रेणी ही अपने सदस्यों पर नियंत्रण रखती थी। लेकिन रोमन साम्राज्य के पतन के पश्चात् जैसे-जैसे वाणिज्य-व्यापार का पतन हुआ, श्रेणी व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित होती चली गई तथा श्रेणी के सदस्य जाति के रूप में परिवर्तित होते चले गए। राम शरण शर्मा कृत 'प्राचीन भारत का परिचय' में लिखा है कि :- 473 ई0 का मंदसौर अभिलेख के अनुसार रेशम बुनकरों की श्रेणी गुजरात देश से मालवा आ गई। श्रेणी के सदस्यों ने अलग-अलग धंधे अपना लिये लेकिन श्रेणी में उनकी आस्था बनी रही।'' बस्तुतः सामाजिक गतिशीलता घटने से जाति व्यवस्था रूढ़ हो गई। विभिन्न जातियां कार्यो से संबंधित है तथा इनका वर्ण व्यवस्था से कोई संबंध नहीं है जैसेः- लौहकार, कुंभकार, बुनकर, स्वर्णकार आदि। भारत में आये विभिन्न विदेशी भी समाज में घुलमिल

कर विभिन्न जातियों के रूप में स्थापित हो गए। जैसे :-

कुछ राजपुत, गुर्जर इत्यादि।

जाति व्यवस्था का उद्‌भव अर्थिक स्थिरता या जड़ता से हुआ है तथा अर्थव्यवस्था में गतिशीलता तथा अर्थिक विकास से इसे समाप्त किया जा सकता है। जाति व्यवस्था बंशानुगत होती है।

इसके विपरीत प्राचीन काल से आज की तिथि तक कभी भी वर्ण के अर्थ में परिवर्तन नहीं हुआ।

कबीर ने भी वर्ण व्यवस्था का वही अर्थ लगाया है। यह सत, रज तथा तम गुण से संबंधित है। इसका अर्थ जाति कदापि नहीं है।

''ऐसे भेद विगूचन - भारी।
वेद कतेब दीन अरू-दुनिया, कौन पुरूष कौन नारी।
एक बूंद एकै मल-मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोतिये सब उत्पन्ना, को ब्राह्मण को सूदा॥
रजगुण ब्रह्मा, तमगुण संकर, सतगुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक नाम-जपहुरै, हिन्दु तुरक न कोई॥
माटी का प्यंड सहजि उपपंना, नॉद स व्यंद समांना।
विनसि गयां थै का नांव घरिहौ पढि गुनि भ्रंम जाना॥

(कबीरः हजारी प्रसाद द्विवेदी)

इस प्रकार वर्ण तथा जाति एक दुसरे से पूर्णतया भिन्न है। प्रत्येक जाति, धर्म, समुदाय, कबीला सभी में सभी वर्णो के लोग होते हैं। सभी जातियों मे सभी वर्णो के लोग होते है। वस्तुतः वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था अर्थात् वंशानुगत आधारित सामाजिक व्यवस्था के विल्कुल विपरीत तथा भिन्न है। वस्तुतः वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था का विरोधी है। वर्णव्यवस्था के अनुसार यदि किसी ब्राह्मण का पुत्र शूद्र है तो उसे ब्राह्मण का कृत्य नहीं वल्कि शूद्र का कृत्य करना चाहिए। इसी तरह यदि किसी शूद्र का पुत्र क्षत्रिय है तो उसे क्षत्रिय का कृत्य करना चाहिए तथा

यदि शूद्र का पुत्र या संतान ब्राह्मण है तो उसे ब्राह्मण का कृत्य करना चाहिए।

वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना का अर्थ है कि व्यक्ति अपने वर्ण के अनुसार ही समाज मे आचरण तथा कृत्य करे न कि वंशानुगत या जातिगत आधार पर।

बताए गए सभी कर्तव्य वर्ण के है जाति के नहीं।

स्मृतिग्रंथ जैसे मनुस्मृति भी वर्ण को ही आधार मानता है जाति को नहीं।

वर्णव्यवस्था के आधार सत, रज, तम गुणों की समानता यूनानी दर्शन के विवेक, साहस तथा क्षुधा से की जा सकती है।

वर्ण राशियों से संम्बद्ध है तथा राशियां नक्षत्रों में विभाजित हैं।

भारत में आधुनिक काल में एक संपूर्ण लेखन स्थापित हुआ है जिसमें विभिन्न शासकों की जाति ढूढने की कोशिश की गई है तथा मौर्यो की जाति शूद्र, गुप्तों तथा हर्ष की जाति वैश्य तथा सातबाहनों की ब्राह्मण निर्धारित की गई है। लेकिन यह बिल्कुल तर्क संगत नही है।

वस्तुतः प्राचीन काल से आज की तिथि तक कभी भी वर्ण के अर्थ में परिवर्तन नहीं हुआ है।

इसी प्रकार रामशरण शर्मा द्वारा 'प्रारंभिक भारत का परिचय' में जो वर्ण की व्याख्या की गई है उसका कोई आधार नहीं है तथा इसे स्वीकार नही किया जा सकता।

रामशरण शर्मा ने लिखा है - ''समाज में वर्गो के सृजन का सबसे बड़ा कारण हुआ स्थानीय निवासियों पर आर्यो का आधिपत्य। आर्यो द्वारा जीते गए दास तथा दस्युजन, दास (गुलाम) तथा शूद्र हो गए। ऋग्वेद में आर्यवर्ण तथा दासवर्ण का उल्लेख है। जीती गई वस्तुओं में कबीले के सरदारों तथा पुरोहितों को अधिक हिस्सा मिलता था तथा स्वभावतः वे अपने गोतियों तथा भाई बंधुओं को बंचित करते हुए अधिकाधिक संपन्न होते गए। इससे कबीले में सामाजिक असमानता का

सृजन हुआ। धीरे-धीरे कबायली समाज तीन वर्गो में बंट गया। योद्धा, पुरोहित तथा सामान्य जन (प्रजा)। इसी तरह का विभाजन ईरान में भी हुआ।'' चौथा वर्ण जो शूद्र कहलाता था ऋग्वेद काल के अंत में दिखाई देता है, क्योकि इसका सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के दशम मंडल में है जो सबसे बाद में जोड़ा गया।

''विविध विशेषाधिकारों का दावा करने वाले पुरोहितों या ब्राह्मणों की श्रेष्टता के विरूद्ध क्षत्रियो का खड़ा होना नए धर्मो के उद्भव का अन्यतम कारण हुआ। जैनधर्म के संस्थापक वर्धमान महावीर तथा बौद्धधर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध दोनो क्षत्रिय थे तथा दोनो नें ब्राह्मणों की मान्यताओं को चुनौती दी।''

'''वर्ण अनगणित जातियों तथा उपजातियों में बंट गए।''

लेकिन वर्णव्यवस्था का अर्थ स्पष्ट हो जाने के बाद यह साफ है कि उपर्युक्त विवरण से सहमत नहीं हुआ जा सकता तथा ये पुस्तके वर्तमान राजनीति का दिशा निर्धारित करने का स्वेच्छानुसार प्रयास करती है।

श्रोतः-

1) ऋग्वेद - मुख्य आधार आचार्य सायण

- कृतिकारः डा0 महेश चन्द्र शर्मा 'गौतम'

भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ

2) भगवत गीता :- गीता प्रेस, गोरखपुर

3) बराह मिहिर कृतः- बृहत जातक - पंडित केवल आनंद जोशी, राधा पकेट बुक्स

4) छान्दोग्य उपनिषद :- सत्यार्थ सूत्र - डायनामिक स्पिरिट्यूल लाइफ सीरीज

5) श्रीमद् भागवत महापुराण - गीताप्रेस, गोरखपुर

6) वृहद् पराशर द्वोराशास्त्रम :- श्री ठाकुर प्रसाद पुस्तक भंडार, बाराणसी

7) राम शरण शर्मा :- प्रारंभिक भारत का परिचय, ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राईवेट लिमिटेड

8) प्राचीन भारत का इतिहास :- द्विजेन्द्र नारायण झा, कृष्ण मोहन श्रीमाली - हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

9) विज्ञान दशम की पुस्तक :- बिहार स्टेट टेक्टस्टबुक पब्लिशेज कोरपोरेशन लिमिटेड

10) मनुस्मृति :- पूजा प्रकाशन - श्री गजेन्द्र सिंह जी

11) कबीर :- हजारी प्रसाद द्विवेदी - राज कमल प्रकाशन

टिप्पनी

1) यह लेखन वर्णव्ववस्था के अर्थ को स्पष्ट करता है/डी-कोड करता है।

2) यह वर्ण तथा जाति के अंतर को स्पष्ट करता है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण को जाति से पृथक करता है।

3) यह लेखन स्पष्ट करता है कि वर्ण व्यवस्था जातिव्यवस्था का घोर बिरोधी है।

4) यह लेखन भारत के सैकड़ो वर्षो के इतिहास लेखन के आधार पर प्रश्नचिह्न लगाता है। इस लेखन के आधार पर संपूर्ण भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता पड़ सकती है।

5) यह लेखन इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र जैसे विषयों को भी प्रभावित करेगा।

6) यह लेखन भारतीय राजनीति की विसंगतियों तथा भ्रम को दूर करेगा। भारतीय समाज को जोड़ने का कार्य करेगा। सबसे बढ़ कर यह दलित उत्पीड़न को समाप्त करने का सैद्धांतिक आधार प्रदान करेगा।

नोटः किसी भी विवाद का न्यायक्षेत्र कटिहार रहेगा।

ISBN No.

978-81-931075-2-2

website: www.decodingvarnavyavastha.in

© कापीराईट सुरक्षित

मुद्रकः प्रशान्त ऑफसेट, कटिहार - 9431260411